REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 2 | NOVEMBER - 2024

साठोत्तरी कविता के सामाजिक आयाम का अध्ययन

डॉ. रमा तिवारी
अतिथि विद्वान, हिन्दी विभाग,
पंडित शंभूनाथ शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

सारांश –

साठोत्तरी कविता (1960 के बाद की हिंदी कविता) ने स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज में हो रहे गहरे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों को अपनी अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया। इस दौर की कविताएं यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए सामाजिक विडंबनाओं, शोषण और अन्याय को उजागर करती हैं। कविताओं में बेरोजगारी, गरीबी, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण से उत्पन्न समस्याओं को चित्रित किया गया। कवियों ने सामूहिक अनुभवों की बजाय व्यक्तिगत संघर्षों और अनुभूतियों पर ध्यान केंद्रित किया। जाति–आधारित भेदभाव, वर्ग संघर्ष और नारी स्वतंत्रता के मुद्दों को कविताओं में प्रमुखता दी गई। इस दौर के कवियों ने राजनीतिक विडंबनाओं, सत्ता के दुरुपयोग और लोकतांत्रिक अस्थिरता पर सवाल उठाए। नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों ने किसानों, श्रमिकों और गरीब वर्ग के संघर्षों को अपनी कविताओं में आवाज दी। महिला कवयित्रियों ने स्त्री–स्वतंत्रता, पहचान और लैंगिक असमानता पर गहन चिंतन किया। इस प्रकार साठोत्तरी कविता समाज की जटिलताओं और विरोधाभासों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हुए भारतीय समाज के यथार्थ को नए दृष्टिकोण और संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करती है। इसका सामाजिक आयाम आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायक है।

मुख्य शब्द – साठोत्तरी कविता, नयी कविता, समकालीन कविता एवं समाज।

प्रस्तावना –

साठोत्तरी कविता हिंदी साहित्य का वह महत्वपूर्ण युग है, जिसने भारतीय समाज में हो रहे तीव्र बदलावों, सामाजिक विडंबनाओं और असमानताओं को केंद्र में रखते हुए साहित्यिकदृष्टिकोण को नया आयाम दिया। यह काल भारत के स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद का था, जब समाज राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक विषमताओं, और सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा था।

साठोत्तरी कविता ने पारंपरिक काव्य शैलियों से अलग हटकर यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, और सामाजिक चेतना को प्रमुखता दी। इस दौर के कवियों ने शोषित, वंचित और उपेक्षित वर्गों की समस्याओं को सामने लाते हुए उनकी आवाज बनने का प्रयास किया। राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक अन्याय और शहरीकरण से उत्पन्न चुनौतियों को भी इन कविताओं में अभिव्यक्ति मिली।

इस अध्ययन का उद्देश्य साठोत्तरी कविता के सामाजिक आयामों की पड़ताल करना है। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार इन कविताओं ने समाज के ज्वलंत मुद्दों, जैसे जाति भेदभाव, लैंगिक असमानता, वर्ग संघर्ष और नारी स्वतंत्रता को अभिव्यक्त किया और इसके माध्यम से एक नई साहित्यिक परंपरा की शुरुआत की।

यह प्रस्तावना साठोत्तरी कविता के महत्व और उसके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रभावों को उजागर करने की दिशा में एक प्रयास है।

विश्लेषण –

साठोत्तरी कविता का सामाजिक आयाम स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में हो रहे तीव्र परिवर्तनों का साहित्यिक दस्तावेज है। इस दौर में कवियों ने समाज की वास्तविकताओं को नई दृष्टि से देखा और अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक संघर्षों, विडंबनाओं और परिवर्तनों को गहराई से व्यक्त किया।

साठोत्तरी युगीन साहित्य में निरन्तर बढ़ते जा रहे भ्रष्टाचार के कारण सामाजिक जीवन, जैसे मूल्यहीन–सा हो गया है। समकालीन कवि भ्रष्टाचार की सारी स्थितियों से पूर्णतः परिचित हैं क्योंकि वह इन्हीं भ्रष्टाचारियों के बीच में रहता है। अपने अस्तित्त्व के साथ–साथ आम जनता के अस्तित्त्व के लिए संघर्ष करता है और इन शोषकों और अपराधियों के विरुद्ध अपनी लेखनी चलाता है। वह चाहता है कि यह सब खत्म हो और सभी सुखी रहें। वह सार्थक बदलाव चाहता है और इसलिए उसने खुलकर सार्थक काव्य अभिव्यक्ति भी की है। इसे इंकार नहीं किया जा सकता। गुण्डागर्दी के जितने भी रूप हो सकते हैं, सभी आज देखने को मिल रहे हैं, बलात्कार, राहजनी, डकैती, चोरी और लूट–खसोट सभी कुछ दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। जनता की सुरक्षा के लिए तैनात पुलिस बल आज 'रजिस्टर्ड' गुण्डे के रूप में, सबसे अधिक शोषण कर रहा है। अपराधियों से मिलकर वह स्वयं चोरी डकैती और कभी–कभी बलात्कार तक भी करता है और करवाता है। किसी भी युवती के साथ थाने के अंदार सामूहिक बलात्कार के चर्चे आजकल नित्य ही अखबारों में होते हैं। असली अपराधियों के पकड़ने के नाम पर अक्सर पुलिस नाटक करती है जबकि उसे पता है कि अपराधी कहाँ है। आज छोटे से लेकर बड़ा तक कोई भी कार्य हो, नौकरी की बहाली हो या प्रमोशन हो, रिश्वत की सबसे अहं भूमिका रही है। आज इसमें सिफारिस की एक कड़ी और जुड़ गयी है। सिफारिश पहले, रिश्वत बात में। अगर ये दोनों चीजें किसी भी अयोग्य व्यक्ति के पास हो तो निश्चय ही आज ऊँची से ऊँची कुर्सी का मालिक बन जाता है। वह स्वयं रिश्वत देकर नौकरी प्राप्त करता है। इसलिए अधिकार पाते ही वह स्वयं भी खुलेआम रिश्वत लेना शुरू कर देता है। इस सामूहिक चोरी में पूंजीपति वर्ग मालामाल है और सामान्य वर्ग बेहाल है। देश में चाहे कितना ही भयंकर अकाल भुखमरी और अव्यवस्था क्यों न हो पूँजीपतियों के गोदाम हमेशा भरे रहते हैं। आवश्यकता के अनुसार उसे ऊँचे दामों पर बेंचकर मुनाफा कमाते हैं और गरीब जनता एक–एक पैसा जोड़–जोड़कर किसी तरह से अपना गुजारा करती है।

तद्युगीन परिवेश में सामाजिक भ्रष्टाचार दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। चाहे वह मुनाफाखोरी, अफसरशाही, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी गुण्डागर्दी, राहजनी, चोरी–डकैती तथा बालात्कार कुछ भी हो, इनमें दिन प्रतिदिन गुणोत्तर वृद्धि होती जा रही है। यहीं आकर भारत का समाजवाद निरर्थक और मात्र धोखा लगने लगता है। रिश्वतखोरी, सिफारिश और शोषण के त्रिकोण में फंसा समकालीन जनजीवन त्रस्त है। आर्थिक स्वतंत्रता के मोह में फसी महिलाएं जो कार्यालयों में कार्य करती हैं, का जिस्मानी शोषण इस भ्रष्टाचार का आम अंग बन चुका है। शिक्षित युवा बेरोजगार अपनी–अपनी डिग्रियाँ सीने पर लादे दर–दर भटकने के लिए विवश हैं। निहित स्वार्थों और दलगत राजनीति के कारण पूरा देश ही अस्थिरता की स्थिति में गुजर रहा है जिसमें बेकारी, भुखमरी, आत्महत्या, शोषण, चोरबाजारी, आतंक, साम्प्रदायिक उन्माद और वेश्यावृत्ति जैसी घटनाएँ आम हो गयी हैं।

समकालीन जीवन में दहेज निश्चित रूप से समाज में अव्यवस्था फैलाने का कार्य कर रहा है। दहेज के कारण कभी–कभी तो एक ही साथ दोनों घर बर्बाद हो जाते हैं। बेटी के दहेज के लिये किसी तरह से उसका पिता धन इकट्ठा करता है तो उसकी डोली उठती है और वह डोली जब अर्थी के साथ में श्मशान तक जाती है तो दहेज निरोधक कानून के अंतर्गत हत्या और शोषण के कारण ससुराल पक्ष के लोग अपराधी करार दिये जाते हैं। ऐसी स्थिति में दोनों घर बर्बाद हो जाते हैं। इसलिए दहेज रूपी राक्षस को मानवीयता में बाधक बनने

से रोकना होगा तभी हम समाज को नयी दिशा दे पायेंगे। बिखरते संबंधों के कारण पुरुष और स्त्री दोनों ही दो रास्तों पर खड़े मिलते हैं। इससे उनमें स्वाभाविक बंधनहीनता और उच्च श्रृंखलता आ जाती है। मान–मर्यादा के दायरे टूट जाते हैं और अपने पारिवारिक कुण्ठा को मिटाने के लिए बहुस्त्री या बहुपुरुष संबंधों को स्वीकारने में भी नहीं हिचकते। ऐसे ही संबंधों के कारण, वेश्यावृत्ति, कार्ल–गर्ल की संख्या बढ़ी है और पुरुषों में भी यौन संबंधों के प्रति खुला और घिनौना भाव जगा है। इन दोनों ही स्थितियों का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि –

''कई औरतों को खुश।
करने की कोशिश में।
कई शक्ल।
बदल रहा है।
सोफे पर बैठा।
नामर्द।''[1]

साठोत्तरी कविता एक वैयक्तिक प्रक्रिया है। जिसका प्रयास है सामाजिक विसंगतियाँ और विडम्बनाओं को उजाड़कर सामने रख देने का इन्हीं अर्थों में कभी–कभी यह अश्लील भी लगती है। क्योंकि कवि यौन सम्बन्धों को मात्र अश्लील कहकर त्यागते नहीं बल्कि उसे पूरी घृणा और प्रेम के साथ चित्रित करते हैं। इसलिये कभी–कभी ये वर्जित प्रदेश की सीमाओं को नकार कर आगे बढ़ जाते हैं। साठोत्तरी कविता की बिम्ब योजना अर्थ की लय या आत्म साक्षत्कार जैसे सिद्धान्तवादी नारों से अलग हटकर इन कवियों ने अपने आन्तरिक संकट को इन कवियों ने अपने अभिव्यक्ति का विषय बनाया। साठोत्तरी गीतियों में वर्तमान समय में प्रेम का एक नया रूप दर्शनीय है–

रूपहीन गंध–गीत बेले ने भी गाया
मेरे ही अर्थों को मुझमें ही महकाया
कई गूढ़ गीत रचे चांदनी कसावों ने
व्यापक व्याख्या कर दी फागुन हवाओं ने,
एक प्रीति दी मुझको–
बिखरे सम्बन्ध ने।[2]
प्रेम में संयोग का हत्व निर्विवाद है–
रोज कहाँ जुड़ती–मन की टूटी कड़ियाँ,
पहने क्यों न हम फूलों की हथकड़ियाँ
यह पलाश–वन
पूरा/आँख से उठाएँ।[3]
तथा
होंठ की परछाइयाँ गाने लगी हैं
दर्द को जमुहाइयाँ आने लगी हैं
जीतती है हार बारम्बार मेरी,
लरजती है महकती मनुहार मेरी,
गन्ध के संकेत : झूठे मान–प्रकरण
यह सुगन्धित और शीतल दाह के क्षण।[4]

प्रिय दूर हे फिर भी उमड़ते मेघों की लरजती झलक प्रेमी को उसकी प्रिया का रूप याद दिला देती है। नए उपमानों में प्रिया का रूप वर्णन देखिए–

वह कि जो उलझा हुआ कामायनी के छन्द सा
नीर से किले हुए सुकुमार तन के गन्ध सा
सादगी ऐसी कि जिस की देवता पूजा करे
रूप ऐसा चाँदनी जिस के लिए पानी भरे।[5]

चन्द्रकान्त देवताले अपने प्रारम्भिक संग्रहों 'हड्डियों में छिपा ज्वर' (1973), 'दीवारों पर खून से' (1975) में अकविता के एब्सर्डबोध से ग्रस्त रहे। उन्होंने लिखा – ''पूरा देश बूचड़खाने की तरह ग्ग। और यह सदी मुझे/बिस्कुट की तरह चबाए जा रही है।''[6] निश्चित ही इन संग्रहों की कविताओं में वैसी ही आक्रामकता, अराजक विद्रोहभाव, भाषाई तेबर आदि मिलते हैं। लेकिन 'लकड़बग्घा हँस रहा है' (1980), 'रोशनी के मैदान की तरफ' (1982) आदि में कवि बदले बोध के अनुरूप नया तेवर लेकर आता है, जहाँ वह बड़े शांत, ठंडे भाव से व्यक्ति और व्यवस्था वर्तमान और इतिहास के द्वन्द्वात्मक रूप को प्रस्तुत करता है। कवि मानव–जीवन की स्थितियों की भीषणता को देखता और उनसे मुक्ति की चिन्ता करता है। वह अपने युग के जटिल अन्तर्विरोधों की रेटॉरिट की शैली में विस्तार और सूक्ष्मता के साथ किन्तु तटस्थ और किसी भी प्रकार अन्तरिक तनाव से मुक्त रहते हुए प्रस्तुत कर देता है।

चन्द्रकान्त देवताले अपने बिम्बों के माध्यम से खामोशी, अजनबीपन, दमघोंटू अंधेरे, आतंक, आर्थिक पीड़ा आदि का माहौल खड़ा करते हैं–

''चीजों के अदृश्य दांत तुम्हारी स्मृति को
कुतरने को कोशिश करते हैं
पर चीजें तुम्हें अपनी नहीं लगतीं।''[7]

इस प्रकार मैं कह सकती हूँ कि चन्द्रकान्त देवताले भूखण्ड तप रहा है लम्बी कविता के माध्यम से इस दौर में बढ़ते हुए जन संघर्षों के प्रभाव में अपनी कुंठित मानसिकता से संघर्ष करने और मुक्त होने में सफल हुए हैं।

राजनीतिक दुस्साहसिकता के बावजूद इस कविता में सामाजिक बदलाव में कवि की आस्था व्यक्त हुई है। यद्यपि ''गोली दागो पोस्टर'' में अतिवादी भटकाव मिलता है, जहाँ –

''यह कविता नहीं है
यह गोली दागने की समझ है
जो तमाम कलम चलाने वालों को
तमाम हल चलाने वालों से मिल रही है।''[8]

विषम परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता का एहसास कवि अपने अगले काव्य–संग्रह 'आग हर चीज में बतायी गयी है' (1987) में भी करता है। बदलाव के लिए भयावह अंधेरे के खिलाफ आवाज उठाने के लिए जनता को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है–

''कब तक देखते रहोगे करोड़ों लोगों
इस भद्दे नाटक को
इसका परदा आप से आप गिरने वाला नहीं
साथियों मंच सहित उखड़ कर फेंकना होगा
इस ताम–झाम कम्पनी को।
× × × गया, साथियों गया
मिट्टी के घड़े का जमाना
जो पाप से भर जाने के कारण

फूट जाता था
आप से आप कभी।''[9]

यह सही है कि बातचीत के लहजे में लिखी गयी इस कविता में आन्तरिक लयवत्ता का अभाव और यथार्थ की अत्यन्त सरलीकृत समझ है।

लीलाधर जगूड़ी की प्रगतिशील चेतना काव्य में स्थान–स्थान पर प्रस्फुटित हुए दिखाई देती है। देश के सौंपरूपी पूँजीपतियों एवं शासकों ने अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु वस्तुओं को गोदामों में छिपा रखा है। अभाव निर्माण किया है ताकी उसे दुगने भाव से वह बेच सके। कवि यह देखकर अपनी कलम के माध्यम से नब्बे प्रतिशत गरीब जनता की वाणी को मुखरित करता है। भूख की समस्या एक विकराल समस्या है जो आदमी को कुछ भी करने के लिए मजबूर कर देती है। कवि इस भूख की वेदना को सब की एक जैसी होती है। चाहे अमीर की हो या गरीब की –

"एक चिड़िया की भूख
एक चीटीं की भूख
एक हाथी की भूख
भूख चाहे किसी की हो
मार एक है"[10]

समकालीन अनेक समीक्षकों ने भी इसे मुक्तिबोध की एक अत्यन्त सशक्त रचना के रूप में मान्यता दी है। वस्तुपरक दृष्टि से देखने पर भी यह कविता मुक्तिबोध के काव्य का एक अत्यन्त समर्थ उदाहरण है। मुक्तिबोध की रचना शक्ति और रचना शैली की सारी प्रतिनिधि विशेषताओं को इस कविता के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इसमें कवि का आत्म विश्लेषण भी है और दर्शन भी। इसमें जितनी सजग कवि के चिन्तन की भूमिकाएँ हैं उतनी ही उन्मुक्त उनकी कल्पना भी इसमें फैण्टेसी का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस कविता में कवि ने अपने वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बड़ी लम्बी दूरी तय की है और बड़ा ही विशाल आयोजन किया है। सारी कविता में अपनी परम अभिव्यक्ति को पा सकने का अकुलता उसके न पा सकने का विक्षोभ और उसके लिए किये जाने वाले सतत् प्रयत्न का वर्णन है। इस क्रम में भीतर तथा बहार से निरन्तर जूझने वाली उसकी शक्ति तथा अन्तर्मन्थन का भी आकलन है यह कविता– ''वातावरण निर्माण क्षमता उसके घनीभूत प्रभाव की दृष्टि से भी नये काव्य में अद्वितीय है– इसमें एक ओर युग का समूचा इतिहास अपने बाहरी द्वन्द्वों को लिए हुए मौजूद है। दूसरी ओर आत्म साक्षात्कार तथा आत्म विश्लेषण के स्तर पर एक कवि के अन्तः व्यक्तित्व की कशमकश भी पूरी सजीवता के साथ आयी है।''[11] शमशेर के अनुसार– ''यह कविता हिन्दी के आधुनिक काव्य सृष्टि का सर्वोपरि विजय चिन्ह है।''[12]

समकालीन कवि धूमिल को पूरे सामाजिक स्तर पर विसंगतियां ही दिखाई देती है। यहां तक की प्रवृत्ति भी उसका साथ देती हुई नई लगती है। जीवन स्वयं में एक व्यंग होता जा रहा है क्योंकि स्वतंत्रता के बाद जो मोह भंग का एहसास जागा है उसने बड़ी ही तेजी से समकालीन रचनाकार को सवालों के घेरे में लाकर खड़ाकर दिया है। वह बार–बार सवाल पर सवाल करता जा रहा है। लेकिन कोई सार्थक उत्तर ना पाकर चुप हो जाता है–

''बीस साल बाद
मै अपने आप से एक सवाल करता हूँ
जानवर बनाने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है।
और बिना किसी के उत्तर के चुपचाप
आगे बड़ जाता हूँ।''[13]

मानवीय जीवन के इन सवालों से उलझने के बाद कवि सुदामा पाँड़े धूमिल को यह महसूस होने लगता है कि नगर घर कहीं भी आत्मीय वातावरण नहीं है। आत्मीयता पारस्परिक सद्भाव और मैत्री के अभाव में लोगों

का पारस्परिक संबंध कटुतापूर्ण व पीड़ादायक हो गया है। मनुष्य के जीवन में हँसी रूठ गई है। वह हाथों हाथ बाटता गया है। ऐसी स्थिति में सारे परिवेश के प्रति ही अविश्वास का भाव जागा है।

इस विद्रूप वातावरण की भावनात्मक विषक्तता को देखकर किसी का भी किसी पर विश्वास नहीं रहा उसे यथार्थ की बात पर भी विश्वास नहीं होता है। अगर होता भी है तो वह उसे सीधे और सहज ढंग से ग्रहण नहीं कर पाता है। उस पर व्यंग्य करता या तो भावी भय की आशंका से सतर्क हो जाता है। विसंगति बोध के परिवेश में धूमिल की 'अकाल–दर्शन' कविता ताजातरीन लगती है –

''लोग बिलबिलास रहै है (पेड़ो को नंगा करते हुए)
पत्ते और छाल
खा रहे है
मर रहे है दान
कर रहे है।
जलसों–जूलूसो में भीड़ की पूरी ईमानधारी से
हिस्सा ले रहे। और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे है।
झूलते हुए चेहरो पर कोई चेतावनी नही है।''[14]

समाज में अव्यस्था का आलम छाया हुआ है। धूमिल की 'एकांत कथा' शीर्षक कविता सामाजिक विसंगति बोध को इस प्रकार व्यक्त करती है –

''सड़को मे होता हूँ
बहसों में होता हूँ
रह रह चमकता हूँ
लेकिन हर बार वापस घर लौट कर
कमरे के अपने एकांत में
जूते से निकाले गए पांव सा
महकता हूँ।''[15]

इसी सामाजिक विसंगति के प्रसंग में धूमिल की 'मोचीराम' शीर्षक कविता सामाजिक विसंगति बोध का अनूठा स्वीकार करना न्यायोचित लगती है–

''सच कहता हूँ–उस समय
रांपी की मूठ को हाथँ संभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कही जाती है
हाँथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाए हुए बच्चे सा
काम पर आने से बार–बार इनकार करता है
लगता है की चमड़े की शराफत के पीछे
कोई जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है।''[16]

धूमिल मन से इतने स्वस्थ थे कि समूची सामाजिक व्यवस्था के अस्वास्थ को सहन नही कर पाते थे और मन तो अन्त तक बाहरी कमजोरी के दबाव को अस्वीकार करता रहा। इसी कारण धूमिल को लगता है की –

भूख और भूख की आड़ में
चबाई गई चीजो का अक्स
उनके दाँतो पर ढूँढ़ना
बेकार है।''[17]

सामाजिक परिवेश और साम्प्रदायिकता का जीता जागता उदाहरण ''आतिश के अनार सी वह लड़की'' शीर्षक में भी देखा जा सकता है–

''जवानी जब भी फैसले लेती है
गुस्सा जब भी जनून में उभड़ता है
हम साहब के एक नए तेवर से परिचित होते है
तब हमें आग के लिए
दूसरा नाम ढूढ़ना नहीं पड़ता है।''[18]

धूमिल एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने सामाजिक परिवेश को निकट से देखा और आत्मसात कर कविता में उतार दिया ''खून का हिसाब'' शीर्षक कविता में यह भावचित्र द्रष्टव्य है –

''खबरो के पीछे खबरे चलती हैं, ऐसे में सच्चाई
आईना बनती है धारदार
दुर्घटना की बेमुरब्बत जगह से दूर
कोसो दूर जब आँसू अंगारे बनते जा रहे हैं
शब्दों के कुहराम में सिर्फ बदला गूँजता है
चेहरा भर आइने के सामने
बालों में रोती हुई कंघी से एक कमसिन भुजाली
खून का हिसाब चुकता करने की कसम खाती है।''[19]

धूमिल के काव्य में सामाजिक यथार्थ मुखर रूप से चित्रित किया गया है– स्वातंत्रोत्तर परिवेश का चित्रण करते हुए कवि धूमिल ने यथार्थ बयान निम्नानुसार वर्णित किए है–

"बाहर आजादी से और भीतर अनाज से लड़ता है।
आगाह करो उन्हें की यह झुकने की लज्जा नहीं
सिर्फ चौखट की ऊँचाई भूल जाने की चोट है।"[20]

सुदामा पाँडे का प्रजातंत्र काव्य संकलन के अंतर्गत आज के परिवेश की दशा कितनी यथार्थ और कितनी चिंतनशील लगती है, यथा–

"मालिक का सीझा हुआ चेहरा
जैसे बासी रोटी पर किसी
शरारती महराज ने

दो आँखे बना दी हो
थाली आते ही मेरी टाँगों के नीचे
एक कुत्ता आ जाता है
कुर्सी से कौर तक फिर वही कुकुरबू।"[21]

सुदामा पाँडे धूमिल के काव्य में यथार्थ का हथौड़ा घन बनकर विसंगतियों पर चोट करता है। कवि के विपक्षधर्मी प्रतिबद्ध कवि रहे है। इस अवस्था में जो भयग्रस्त है, संघर्षरत है, संत्रस्त है, के लिए जूझ रहे है, सामाजिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, स्वार्थ लोलुपता, कुंठित अवस्था कवि की कविताओं की भूमिका रही है। इसलिए यह कहना अक्षरशः सत्य होगा कि सुदामा पाँडे धूमिल युगीन परिवेश के एक सजग, संवेदनशील और यथार्थवादी कवि रहे हैं। कवि ने अपने काव्य में इसका चित्रण बड़ी ईमानदारी से किया है।

भारतीय समाज व्यवस्था का सूक्ष्म चिंतन करते हुए कवि ने पाया कि यहाँ पर एक व्यक्ति खेत को जोतता और बोता है, खून पसीने से फसलें उगाता है तो दूसरा आधी रात में उसे अपनी बनाता है। इस घटना को कवि विधि का विधान नहीं मानते बल्कि यह जग का घोर अभिशाप मानते हैं। उसी प्रकार एक व्यक्ति रोटी के लिए तड़पता है, अधपेट रहता है तो दूसरा घी–दूध–शक्कर का भरपेट मजा लेता है। एक के पास पहनने के लिए वस्त्र नहीं हैं तो दूसरा बहु वस्त्रों का उपभोग करता है। कवि ने नये इंसान के माध्यम से इस अभिशाप को खण्डित करना चाहते हैं, अभिशाप के प्रतिपालकों को दंडित करना चाहते हैं। क्योंकि कवि सामाजिक विषमता के घोर विरोधी हैं– 'अभिशाप जग का' रचना इस तथ्य को व्यक्त करती है–

''एक रोटी के लिए तड़पे सदा अधपेट खाए
दूसरा घी–दूध, शक्कर का मजा भरपेट पाए
मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ।'[22]

'हमारी जिंदगी' रचना में कवि ने श्रमिकों की कई समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उनके दिन बड़े संघर्ष पूर्ण होते हैं। हाड़तोड़ परिश्रम करने के बावजूद, उन्हें उचित मूल्य नहीं मिलता। अशिक्षा, अज्ञान आदि इनके शोषण के प्रमुख कारण हैं। जिसका सेठ, साहूकार तथा जमींदार इसका पूरा लाभ उठाते हैं। इसलिए वे विकल, बेहाल, भूखी जिंदगी जीते हैं, तड़पते और तरसते हैं। कपड़ा बनाने वाले मजदूर सम्पूर्ण विश्व को पहनने के लिए वस्त्र देते हैं किन्तु स्वयं लंगोटी पहनने के लिए मजबूर हैं। बड़े–बड़े राजा–महाराजा उनकी इस दुर्दशा को नजरअंदाज करते हैं।

''हमारी जिंदगी के दिन
बड़े संघर्ष के दिन हैं।
हमेशा काम करते हैं
मगर कम दाम मिलते हैं।''[23]

मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष सदियों से चल रहा है। इस संघर्ष के मूल में सामाजिक विषमता, कटुता, स्वार्थ तथा शोषणवादी नीति है। मिल मालिक मजदूर के श्रम पर बड़े होते हैं, सुख एवं सुविधा भोगते हैं, कवि के शब्दों में वे 'स्वर्ग' भोगते हैं। उनकी स्वार्थ की भूख बहुत बड़ी है। शोषितों का शोषण करने में मानो उन्हें 'तोष' (आनन्द) मिलता हो। 'मिल मालिक' रचना इसी भावनाओं से ओतप्रोत है–

''मिल मालिक का बड़ा पेट है
बड़े पेट में बड़ी भूख है
बड़ी भूख में बड़ा जोर है
बड़े जोर में जुलुम घोर है।''[24]

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः साठोत्तरी कविता हिंदी साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना का सशक्त माध्यम बनकर उभरी। यह केवल काव्य की एक शैली नहीं थी, बल्कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में हो रहे व्यापक परिवर्तनों, विडंबनाओं और असमानताओं का एक सजीव चित्रण थी। इस दौर की कविताओं ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए शोषण, वर्ग–संघर्ष, जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता और राजनीतिक विफलताओं को उजागर किया। कवियों ने शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और सामाजिक अलगाव जैसी नई चुनौतियों को भी अपनी कविताओं में प्रमुखता दी। धूमिल, मुक्तिबोध, नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे कवियों ने अपने लेखन में समाज के वंचित और उपेक्षित वर्गों को आवाज दी। साठोत्तरी कविता ने भारतीय साहित्य को एक नई भाषा और दृष्टिकोण दिया, जिसमें मानव जीवन की आंतरिक संवेदनाओं और सामाजिक यथार्थ के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया गया। इन कविताओं में व्यक्त आक्रोश, पीड़ा और संवेदनशीलता समाज को जागरूक और परिवर्तनशील बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस प्रकार साठोत्तरी कविता सामाजिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से एक ऐतिहासिक मील का पत्थर है, जिसने साहित्य को समाज का दर्पण बनाते हुए सामाजिक अन्याय, असमानता और विडंबनाओं के प्रति गंभीर दृष्टिकोण अपनाया। यह साहित्यिक युग आज भी प्रासंगिक है और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत बना रहेगा।

संदर्भ –

[1] श्रीकांत वर्मा – प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 52
[2] डॉ. शिवबहादुर भदौरिया – पुरवा जो डोल गई, पृष्ठ 16
[3] डॉ. शिवबहादुर भदौरिया – पुरवा जो डोल गई, पृष्ठ 20
[4] डॉ. शिवबहादुर भदौरिया – पुरवा जो डोल गई, पृष्ठ 23.
[5] रामावतार त्यागी – सपने महक उठे, पृष्ठ 25
[6] चन्द्रकान्त देवताले – लकड़बग्घा हँस रहा है : एक दिन, पृष्ठ 23
[7] चन्द्रकान्त देवताले – भूखण्ड तप रहा है : इसी शीर्षक से, पृष्ठ 25
[8] आलोक धन्वा – गोली दागो पोस्टर से, पृष्ठ 17
[9] कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह – इतिहास का संवाद, शब्द कविता, पृष्ठ 20
[10] लीलाधर जगूड़ी – बची हुई पृथ्वी, पृष्ठ 61
[11] डॉ. शिवकुमार मिश्र – आधुनिक कविता और युग दृष्टि, पृष्ठ 282–283
[12] शमशेर बहादुर सिंह – चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ 28
[13] धूमिल – संसद से सड़क तक – बीस साल बाद, पृष्ठ 45
[14] धूमिल – संसद से सड़क तक – अकाल दर्शन, पृष्ठ 16
[15] धूमिल – संसद से सड़क तक – एकांत कथा, पृष्ठ 23
[16] धूमिल – संसद से सड़क तक – मोचीराम, पृष्ठ 41
[17] धूमिल – कल सुनना मुझे–मरणोत्तर धूमिल : एक कथा यात्रा, पृष्ठ 31
[18] धूमिल – कल सुनना मुझे–आतिश के अनार सी वह लड़की, पृष्ठ 58
[19] धूमिल – सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र–खून का हिसाब, पृष्ठ 108
[20] धूमिल – सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र–निहत्थे आदमी से कहा, पृष्ठ 87
[21] धूमिल – सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र–न्यू गरीब हिन्दू होटल, पृष्ठ 25
[22] केदारनाथ अग्रवाल – पुष्पदीप (1994), परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
[23] संपादक अशोक त्रिपाठी – बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी (1996), केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ 25
[24] संपादक अशोक त्रिपाठी – कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह (1997) – केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, पृष्ठ 41